

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 12 अध्याय 10: शिव का वर

14 September 2026



ऋषि की अखण्ड भक्ति से द्रवित होकर, भगवान् शिव, देवी उमा सहित, मार्कण्डेय के आश्रम में प्रकट होकर उन्हें एक वर प्रदान करते हैं — और ऋषि भगवान् की शुद्ध, अटूट भक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं माँगते।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में भगवान् की अचिन्त्य माया के दर्शन कर चुकने के बाद, ऋषि मार्कण्डेय पुनः केवल श्रीहरि की शरण लेते हैं। यह दशम अध्याय उन पर आई एक दूसरी कृपा का वर्णन करता है — इस बार भगवान् शिव से। देवी उमा के साथ आकाश-मार्ग से यात्रा करते हुए, शिव ऋषि को गहन समाधि में लीन देखते हैं, उन्हें जगाने के लिए उनके हृदय में प्रवेश करते हैं, और फिर, भागवत के कुछ सुन्दरतम श्लोकों में, शुद्ध-हृदय सन्तों तथा ब्राह्मणों की महिमा गाते हैं। अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त करने के आमन्त्रण पर, ऋषि संसार की किसी भी वस्तु को न चुनकर, भगवान् स्वयं, उनके प्रिय सेवकों, तथा शिव के प्रति एक अविचल, शाश्वत प्रेम-बन्धन को ही चुनते हैं। यह अध्याय महान् आत्माओं की विनम्रता, भक्तों की संगति, तथा माँगने योग्य एकमात्र उपहार के विषय में है।

अध्याय-पारेचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 12 (द्वादश स्कन्ध — अन्तिम स्कन्ध)
- अध्याय: 10 (दशम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: भगवान् शिव मार्कण्डेय को वर प्रदान करते हैं
- मुख्य वक्ता: सूत गोस्वामी, नैमिषारण्य के ऋषियों को कथा सुनाते हुए; इसके भीतर भगवान् शिव, देवी उमा तथा मार्कण्डेय के वचन
- मुख्य श्रोता: नैमिषारण्य के ऋषिगण, शौनक के नेतृत्व में
- मुख्य स्थान: पुष्पभद्रा नदी के तट पर मार्कण्डेय का आश्रम
- मुख्य विषय-वस्तु: मार्कण्डेय के पास शिव का आगमन, सन्तों तथा ब्राह्मणों की उनकी स्तुति, तथा ऋषि को अटूट भक्ति का वरदान
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 12, अध्याय 10, श्लोक 1-42
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

शिव तथा उमा ऋषि को देखते हैं

भगवान् की योगमाया की महिमा का साक्षात्कार करके, मार्कण्डेय ने केवल श्रीहरि की शरण ली, यह प्रार्थना करते हुए: “मैंने आपके चरणों की शरण ली है, हे हरि, जिनकी माया — जो ज्ञान का मिथ्या रूप धारण करती है — के प्रभाव से विद्वान् तक मोह में गिर पड़ते हैं।” जब वे इस प्रकार पूर्णतः शान्त मन से बैठे थे, तभी भगवान् रुद्र, अपनी पत्नी उमा तथा गणों सहित बैल पर आकाश-मार्ग से यात्रा करते हुए, ऋषि को देखते हैं।

उमा उन्हें देखकर शिव से बोलीं: “इस ब्राह्मण को देखिए, हे प्रभो, जिसकी देह, इन्द्रियाँ तथा मन शान्त हो गए हैं, उस सागर-से जिसके जल तथा मत्स्य आँधी के बीत जाने पर निश्चल हो गए हों। चूँकि आप तप के फल के दाता हैं, कृपया इसके तप का फल प्रकट कीजिए।” भगवान् ने उत्तर दिया कि यह ऋषि किसी भी परिस्थिति में कोई वरदान स्वीकार नहीं करेगा — मोक्ष तक नहीं — क्योंकि इसने अमर भगवान् की परम भक्ति पहले ही प्राप्त कर ली है। “फिर भी,” शिव ने कहा, “हम इस सन्त से वार्ता करेंगे; क्योंकि किसी पवित्र आत्मा से भेंट होना समस्त लाभों में श्रेष्ठतम है।”



देवी उमा के साथ बैल पर आकाश-मार्ग से यात्रा करते हुए, भगवान् शिव मार्कण्डेय को गहन समाधि में लीन देखते हैं, वायुहीन सागर-से निश्चल, और सन्त को आशीर्वाद देने का संकल्प करते हैं।

मार्कण्डेय, अपनी समस्त मानसिक वृत्तियाँ स्थगित किए, न अपनी देह के प्रति सचेत थे, न जगत् के, और उन्होंने विश्व के अधीश्वरों का आगमन तक न जाना। उनकी दशा जानकर, शिव ने अपनी योगमाया से ऋषि के हृदय-गुहा में प्रवेश किया, जैसे वायु किसी छिद्र में प्रवेश करती है। ऋषि, विस्मित होकर, अपने हृदय में सहसा शिव की एक झलक देखते हैं — ऊँचे, त्रिनेत्र, दशभुज, उदित सूर्य-से तेजस्वी, व्याघ्रचर्म धारण किए, रुद्राक्ष, डमरू, त्रिशूल तथा अन्य चिह्न लिए — और उस दर्शन पर आश्चर्य करते हुए, समाधि से जाग उठते हैं। नेत्र खोलकर, उन्होंने तीनों लोकों के एकमात्र गुरु भगवान् रुद्र को उमा तथा गणों सहित आया देखा, और शीश झुकाकर प्रणाम किया। उन्होंने भगवान् तथा देवी का सत्कार, आसन, जल, चन्दन, माला, धूप तथा दीप से पूजन किया, और पूछा कि वे क्या सेवा करें।

सन्तों की महिमा

अत्यन्त प्रसन्न होकर, देवश्रेष्ठ तथा साधुओं के आश्रय भगवान् शिव खुलकर हँसे और ऋषि से बोले। “हमसे अपनी रुचि का एक वर माँगो,” उन्होंने कहा, “क्योंकि हम तीनों — ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं — वरदाताओं के स्वामी हैं; हमारा दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता, और हमारे द्वारा ही मर्त्य अमरत्व पा सकता है।” तब शिव ने असाधारण विनम्रता के वचन कहे, यह घोषणा करते हुए कि दिक्पाल, ब्रह्मा, और स्वयं श्रीहरि भी उन ब्राह्मणों का सम्मान तथा सेवा करते हैं जो पवित्र, शान्त, आसक्ति-रहित किन्तु समस्त प्राणियों के प्रति स्नेही, तथा अनन्य भक्त हैं — जो शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा में, और स्वयं में तथा किसी अन्य प्राणी में, कोई भेद नहीं देखते।

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवाश्चेतनोज्झिताः ।

ते पुनन्त्युरुकालेन यूयं दर्शनमात्रतः ॥ २३ ॥

na hy am-mayāni tīrthāni na devāś cetanojjhitāḥ te punanty uru-kālena yūyaṁ darśana-mātrataḥ

अर्थ: तीर्थ केवल जल से नहीं बनते, न ही निर्जीव प्रतिमाएँ ही देवों को दर्शाती हैं; वे तो दीर्घ काल में शुद्ध करते हैं, जबकि आप-जैसे सन्त केवल दर्शन-मात्र से पवित्र कर देते हैं। (स्कन्ध 12, अध्याय 10, श्लोक 23)



भगवान् शिव सिखाते हैं कि पवित्र नदियाँ तथा प्रतिमाएँ केवल दीर्घ युगों में शुद्ध करती हैं, जबकि एक शुद्ध-हृदय सन्त एक ही दर्शन में पवित्र कर देता है — भगवान् के भक्तों की यही महिमा है (श्लोक 23)।

शिव ने जोड़ा कि ऐसे सन्तों के विषय में सुनने या उन्हें देखने मात्र से भी महापापी तथा नीचतम भी पवित्र हो जाते हैं — तब उनसे वार्ता करने से तो कहना ही क्या। धर्म के रहस्य से भरे इन अमृत-से वचनों को पीते हुए ऋषि तृप्त ही न हो सके; और, विष्णु की माया से इतने लम्बे समय परखे जाने के बाद, वे अब शिव की वाणी की कृपा से अपने समस्त क्लेशों से मुक्त हो गए।

माँगने योग्य एकमात्र वर

तब मार्कण्डेय भगवान् की लीला पर विस्मित हुए — कि विश्व के अधीश्वर स्वयं उन्हें प्रणाम तथा स्तुति करें जो उनके आज्ञापात्र हैं। ऐसा आचरण, उन्होंने कहा, महान् गुरु जगत् को धर्म सिखाने हेतु करते हैं, और वह भगवान् की महिमा को उतना ही नहीं घटाता जितना जादूगर के करतब उसकी शक्ति को। उन्होंने उन भगवान् को प्रणाम किया जो, संकल्प से विश्व की रचना करके तथा जीव-रूप में उसमें प्रवेश करके, गुणों के द्वारा कर्ता-से प्रतीत होते हुए भी उनके परम नियन्ता रहते हैं। “इससे बड़ा कौन-सा वर मैं माँगूँ,” ऋषि ने पूछा, “स्वयं आपसे बड़ा, जिनका दर्शन-मात्र आशीर्वाद है?” फिर भी, वर माँगने के लिए कहे जाने पर, उन्होंने केवल एक वस्तु माँगी।

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात् ।

भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ ३४ ॥

varam ekaṁ vṛṇe 'thāpi pūrṇāt kāmābhivarṣaṇāt bhagavatya acyutāṁ bhaktiṁ tat-pareṣu tathā tvayi

अर्थ: फिर भी मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, जो स्वयं पूर्ण हैं और फिर भी प्रत्येक अभीष्ट वस्तु बरसाते हैं — अच्युत भगवान् की, उनके भक्तों की, तथा वैसे ही आपकी अटूट भक्ति। (स्कन्ध 12, अध्याय 10, श्लोक 34)



भगवान् शिव से कोई भी वर पाने पर, मार्कण्डेय जगत् जो दे सके ऐसा कुछ नहीं माँगते — केवल भगवान् की, उनके भक्तों की, तथा स्वयं शिव की अटूट भक्ति (श्लोक 34)।

ऋषि के मधुर वचनों से प्रसन्न होकर, अपनी पत्नी सहित भगवान् शिव ने उनकी प्रार्थना तथा उससे अधिक पूर्ण की: “भगवान् विष्णु के प्रति भक्ति से पूर्ण तुम, हे महर्षि, तुम्हारी यह समस्त कामना पूर्ण हो; तुम्हारा यश कल्प के अन्त तक स्थिर रहे; धर्म, तथा जरा एवं मृत्यु से मुक्ति तुम्हारी हो; और भूत, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान, आत्म-साक्षात्कार, वैराग्य, तथा एक पुराण का आचार्यत्व तुम्हें प्राप्त हो, ब्राह्मणीय तेज से युक्त तुम।” ये वर देकर, त्रिनेत्र भगवान् अन्तर्धान हो गए, उमा को ऋषि के कर्म तथा उसके समस्त अनुभव बताते हुए। और मार्कण्डेय, सूत कहते हैं, महायोग की महिमा का साक्षात्कार करके, अब भी इच्छानुसार जगत् में विचरण करते हैं, अनन्य रूप से श्रीहरि को समर्पित। जो इस कथा को, भगवान् विष्णु की महिमा से समृद्ध, सुनाता तथा सुनता है, दोनों जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाते हैं।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. महानतम आत्माएँ सर्वाधिक विनम्र होती हैं। भगवान् शिव तक शुद्ध भक्तों को प्रणाम करते हैं, यह सिखाते हुए कि महानता अहंकार से नहीं, श्रद्धा से व्यक्त होती है (श्लोक 19-22)।
2. सन्त दर्शन-मात्र से पवित्र करते हैं। तीर्थ तथा प्रतिमाएँ दीर्घ युगों में पवित्र करते हैं, किन्तु शुद्ध-हृदय भक्त तत्काल — सच्ची भक्ति की यही शक्ति है (श्लोक 23)।
3. सच्चा भक्त केवल भक्ति ही माँगता है। कुछ भी पाने पर, मार्कण्डेय ने दीर्घ जीवन या मोक्ष नहीं, अपितु भगवान्, उनके भक्तों, तथा शिव की अटूट भक्ति माँगी — वह एक उपहार जो शेष सबको समेट लेता है (श्लोक 34)।

4. भक्ति भगवान् के भक्तों को भी समेटती है। मार्कण्डेय के वर में सचेत रूप से भगवान् के भक्तों के प्रति प्रेम भी सम्मिलित था — क्योंकि सच्ची भक्ति स्वाभाविक रूप से अन्य भक्तों के प्रति संगति तथा श्रद्धा में खिलती है (श्लोक 34)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में एक शान्त विस्मय बहता है: संहार के देवता, तपस्वियों में सर्वश्रेष्ठ, ऋषि को परखने नहीं, अपितु उनकी स्तुति करने आते हैं — और उनके माध्यम से समस्त शुद्ध-हृदय भक्तों की। “तीर्थ केवल जल से नहीं बनते,” शिव कहते हैं; एक जीवित सन्त एक ही दृष्टि से पवित्र कर देता है। यह पवित्रता को मापने की हमारी सामान्य रीति का एक अद्भुत विपर्यय है। हम पवित्र नदियों तथा मन्दिरों में जाते हैं, और ठीक ही; किन्तु भागवत हमें स्मरण कराता है कि सच्चा तीर्थ ईश्वर को पूर्णतः समर्पित एक हृदय है, और ऐसा हृदय अपनी उपस्थिति-मात्र से अन्यो को पवित्र कर सकता है। और देखिए मार्कण्डेय वर के साथ क्या करते हैं। वे पहले ही मृत्यु जीत चुके, भगवान् की माया देख चुके, तथा नर-नारायण के दर्शन कर चुके हैं; वे कुछ भी माँग सकते हैं। वे और भक्ति माँगते हैं। यही सच्चे भक्त की अचूक पहचान है: अपने प्रेम का जो पुरस्कार वह चाहता है वह केवल और प्रेम करने की क्षमता है — और केवल भगवान् से नहीं, अपितु प्रत्येक उससे जो भगवान् से प्रेम करता है। उस छोटी-सी याचना में समस्त आध्यात्मिक जीवन का रहस्य निहित है: भक्ति समाप्त होना नहीं चाहती; वह गहराना चाहती है, और संगति में विस्तृत होना चाहती है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज इस शिक्षा का सम्मान कीजिए कि सन्त दर्शन-मात्र से पवित्र करते हैं — और यह कि भक्ति संगति में विस्तृत होती है। किसी एक भक्त, गुरु, या ईश्वर-प्रेमी आत्मा को स्मरण कीजिए जिसका जीवन आपको स्पर्श कर गया, और उनके लिए मौन कृतज्ञता अर्पित कीजिए, शिव के इन वचनों को स्मरण करते हुए कि ऐसी संगति समस्त लाभों में श्रेष्ठतम है। फिर, मार्कण्डेय का अनुसरण करते हुए, उनकी प्रार्थना अपनी बना लीजिए: जगत् जो दे सके ऐसा कुछ ईश्वर से माँगने के बजाय, गहरी, अटूट भक्ति की सच्ची याचना कीजिए — भगवान् की, तथा उन सबकी जो उनसे प्रेम करते हैं। अन्त में “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय” का एक निश्चित संख्या में जप कीजिए, भक्तों की संगति खोजने तथा ईश्वर के प्रति अपने प्रेम को चुपचाप बढ़ने देने का अपना संकल्प अर्पित करते हुए।

उपसंहार

द्वादश स्कन्ध का दशम अध्याय हमें भगवान् शिव के रूप में आती कृपा दिखाता है। देवी उमा के साथ यात्रा करते हुए, शिव मार्कण्डेय को समाधि में लीन देखते हैं, उन्हें जगाते हैं, और — आश्चर्यजनक विनम्रता से — शुद्ध-हृदय सन्तों की महिमा गाते हैं, यह घोषणा करते हुए कि वे एक ही दर्शन में पवित्र कर देते हैं जबकि पवित्र नदियाँ तथा प्रतिमाएँ दीर्घ युग लेती हैं। कोई भी वर पाने पर, ऋषि केवल भगवान् की, उनके भक्तों की, तथा स्वयं शिव की अटूट भक्ति माँगते हैं; और शिव उन्हें यह प्रदान करते हैं, स्थायी यश, जरा-मृत्यु से मुक्ति, तथा एक पुराण के आचार्यत्व सहित। मार्कण्डेय, सदा श्रीहरि को समर्पित, अब भी जगत् में विचरण करते हैं। अध्याय हमारे अपने हृदयों के लिए एक ज्योतिर्मय मानदण्ड छोड़ जाता है: भक्तों की संगति खोजें, एक-दूसरे में विद्यमान ईश्वर का सम्मान करें, और सर्वोपरि, केवल और प्रेम करने की याचना करें।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

सन्दर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (सम्पूर्ण), द्वादश स्कन्ध, दशम अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ॰ श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या भाष्य का पुनरुत्पादन नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-12-adhyay-10-bhagavan-shiv-markandeya-var-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट